P: ISSN No. 2231-0045 RNI No. UPBIL/2012/55438 VOL.-7, ISSUE-4, May-2019
E: ISSN No. 2349-9435 Periodic Research

लोक खेल : परम्परा और विरासत

सारांश

लोक खेल अद्भुत और अलौकिक होते हुए एक कला है और साधना भी। साधना इस अर्थ में कि उनमें बिखराव के नहीं जुड़ाव के भाव होते हैं इसलिए टूटते घरों को बसा देते हैं। इतना ही नहीं बिखरी शक्तियों को एक कर लोक मानस को शक्ति सम्पन्न बना देते हैं। इस तरह दिमागी कसरत कराते हुए व्यक्ति के शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक आदि सर्वांगीण विकास के मुख्य माध्यम होते हैं। दरअसल, जुड़ाव, चेतनता और विकास का माद्दा ही लोक खेलों का मूल उत्स है।

सचमुच ये लोक खेल राजमहलों से लेकर गरीब की कुटिया तक उसी प्रसिद्धि और प्रतिबद्धता के साथ खेले जाकर जीवन को अंगुल–अंगुल गति प्रदान करते हैं। इसलिए कि ये खेल नितांत मौलिक होते हैं। नितांत भी इतने कि जब मन भाया तभी खेल प्रारंभ कभी अकेले तो कभी संघेले।

मुख्य शब्द : लोक, खेल, कला, साधना, परम्परा और विरासत।

लक्ष्मीकान्त चंदेला
सहायक प्राध्यापक,
हिन्दी विभाग,
शासकीय स्वशासी स्नातकोत्तर महाविद्यालय,
छिंदवाड़ा, म.प्र., भारत

प्रस्तावना

जीवन खेल ही तो है। लोक में इसे संघर्ष करते हुए भिन्न–भिन्न स्थानों, अवसरों और उपकरणों या उपकरणों के बिना भांति–भांति प्रकृति से खेला जाता है। लोक गरीब–अमीर की परिभाषा से बहुत ऊपर है इसलिए झोपड़ी में खेले जाने वाला खेल महलों में खेला जाता है और महलों में खेला जाने वाला खेल कुटिया में। इतना ही नहीं लोक और जीवन राग–द्वेषों से मुक्त होता है इन्हीं खेलों की वजह से। इसीलिए खेल लोक सृष्टि की उत्पत्ति काल से ही खेले जाने लगे, यथा– रामायण–महाभारतकाल में, सूरदास जी के समय ब्रज की गलियों में, धूल से खेल रसखान की संवेदना का अनुपम उदाहरण है।

खेलों की परम्परा अतिप्राचीन, पुरातन और आदिम है या कहें कि मनुष्य जन्म से जुड़ी हुई है। कहा तो यहां तक जाता है कि मनुष्य गर्भ से ही उछल–कूद करता हुआ खेलना शुरू कर देता है। जन्मोपरांत मां की गोद में, झूला–पालना में तथा अपने विकास के साथ गली–गोदरी, धूल–मिट्टी, पानी–बरसात में, हम उम्रों–हमजोलियों व वयस्कों के साथ खेल खेलता है। विदेहराज के घर–आंगन में वैदेही की बाल–क्रीड़ा का एक दृष्टांत बुन्देलखंड के गीत में इस तरह मुखरित हुआ है जो लोक खेलों की शिष्ट परम्परा का ज्वलंत उदाहरण है–

''एक बरस की जब भई सीता, दहलान खेलन जाएं।
दोक बरस की जब भई सीता, अंगना में खेलन जाएं।
तीन बरस की जब भई सीता, पौरन खेलन जाएं।
चार बरस की जब भई सीता, फरके में खेलन जाएं।
पांच बरस की जब भई सीता, धूर में खेलन जाएं।
छैक बरस की जब भई सीता, सखियन खेलन जाएं।''[1]

इस तरह छिन–छिन, दिन–ब–दिन और बरस–दर–बरस गतिमान होती लोक खेलों की यह परम्परा अद्भुत और बेमिसाल है। इसीलिए लोक खेल कभी पुराने और उबाऊ नहीं होते बल्कि लोक मंगलकारी, लोकोपकारी एवं रंगभेद, जाति–भेद व नस्ल–भेद से ऊपर होते हैं। सच में लोक खेलों की परम्परा इतनी प्राचीन, पुरातन और सुदीर्घ है तथा इतिहास व्यापक व विस्तृत।

लोक खेलों की परम्परा और विरासत की स्थापना के पूर्व यह जान लेना आवश्यक है कि लोक खेल क्या है? लोक खेल किन्हें कहेंगे और वे कौन–कौन से हो सकते हैं? ये लोक खेल परम्परा और विरासत कैसे हो सकते हैं तथा हमारी संस्कृति और परम्पराओं को अक्षुण्य रखने में कितना कारगर हैं?

लोक खेल से आशय इस उक्ति से अधिक स्पष्ट होगा, यथा– 'जैसा देश वैसा भेष' अर्थात जैसा लोक होता है वैसे ही लोक खेल भी। जिनमें न मैदान की आवश्यकता होती है और न ही कप्तान की, न उपकरण और साधनों

की आवश्यकता होती न ऋतु–मौसम और निश्चित खिलाड़ियों की। जब मन भाया तभी खेल प्रारंभ, कभी अकेले तो कभी संघेले। कभी घर के कोना–कातर में तो कभी हार–पहार में। कभी नदी नहाने जाते हुए तो कभी नागर जोतते हुए। कभी गाय चराते हुए तो कभी हाट–बाजार जाते हुए। कोई निश्चित समय, स्थान और प्रतिभागियों की आवश्यकता न होकर स्थिति–परिस्थिति–परिवेश तथा उमंग–उल्लास की किसी भी घड़ी में खेले जाकर प्रतिभा, ज्ञान, विवेक तथा शक्ति अर्जन कर जीवन को रंगीन बना लेते हों, वही लोक खेल होते हैं। लोक खेलों की बात करें तो इनकी शृंखला विशाल है, यथा– ''रोटी–पन्ना, घर–घूला, कित्तन–कित्तन पानी, झुलमामकरं दो रानी, छिवा–छिबउअल, अटकन–चटकन, पंगोला, कोंडी केरे कोंड़ी के, थाई–थाई थपरी, आतीपाती, चिमटी, नागनटापू लंगड़ी,''[2] गुट्टा, गुड्डे–गुड़िया, दूल्हा–दुल्हन, टिप्पू, कोड़ा बादाम खाई, आदि। जिन्हें बारह महीने समय और सुविधानुसार खेले जा सकते हैं। शोध की सीमा एवं विस्तार के बचाव की दृष्टि से कुछ ही लोक खेलों के वैशिष्ट्य को समादृत किया जा रहा है जिसके माध्यम से यह जान सकेंगे कि लोक खेल हमारी परम्परा और विरासत कैसे और क्यों है? सच में जब हम लोक खेलों को देखते हैं तो उनमें अलग तरह की साधना, कलात्मकता, ज्ञान और संस्कारों की दीवानगी दिखाई देती है जिसकी बदौलत लोक एवं लोक मानस शक्ति सम्पन्न हो पाता है। इससे हमें खेलों का अनुशासन, घर गृहस्थी का सौन्दर्य, स्त्री–पुरुष एवं बेटा–बेटियों, बूढ़े मां–बापों के बीच संबंधों की मधुरता व प्रगाढ़ता दृष्टिगोचर होती है। इसी से जीवन का रहस्य व जीवन विकास की गतिमान परम्परा भी दिखाई देती है। अशोक मिश्र का मानना है कि लोक ''खेल बच्चों के मानस को संस्कारित करने और स्मृतिवान बनाने का भी सहज कार्य करते हैं।''[3] लोक खेल के मनोरंजक स्वरूप पर आचार्य दुर्गाचरण शुक्ल का मानना है कि– ''पराभव करने वाले काल को दांव का दोष निकालकर शुद्ध मनोरंजक खेल का रूप लोक ने दे दिया है।''[4]

जब हम 'चपेटा' लोक खेल को देखते हैं तो जीवन के साथ दुनिया का रहस्य, रीत और प्रीत सब कुछ एक साथ दिखाई देती है। बुन्देली लोक परम्परा के आख्याता दुर्गाचरण शुक्ल अपने नजरिये से लोक समाज और परम्परा के विकास के साथ लोक खेलों की विरासत को चपेटा खेल के माध्यम से व्यक्त करते हुए 'एकनखाजा, दो महाराजा। तीन तियल के। चौ पतियंन के। पचम पच्चीस। लटक चालीस।' की व्यापकता को बताते हैं। ''चपेटा लड़कियों का एक प्रिय खेल है। बुन्देलखंड में इसे लड़कियां प्रायः सावन के महीने में खेलती हैं। यह खेल जिन पांसों में खेला जाता है, वे मिट्टी, लाख, लकड़ी, पीतल या ऊंची आर्थिक स्थिति होने पर चांदी के होते हैं। सामान्यतः डेढ़ अंगुल के परिमाण वाले चौकोर घनाकार ये पांसे प्रायः लाल, पीले, हरे और काले रंग के तथा संख्या पांच, सात, नौ अथवा ग्यारह होते हैं।''5 सच में 'चपेटा' लोक खेल चौकन्नी दृष्टि और हथेलियों, बाजुओं, आदि शारीरिक, आंगिक, मानसिक क्रियाओं का संतुलन सहजता से प्रदान करते हैं।

महत्व

लोक की अपनी महत्ता है और लोक खेलों की अपनी क्योंकि लोक खेल बिना उपकरण और साधनों के खेले जाते हैं तथा राजमहलों से लेकर गरीब की कुटिया तक उसी प्रसिद्धि व प्रतिबद्धता के साथ खेले जाते हैं। जीवन में इनका महत्त्व इसलिए भी है ये लोक जीवन को अंगुल–अंगुल गति प्रदान करते हुए जीने के समीकरणों को हल करते हैं। सच में–

1. लोक खेल एक साधना है और कला भी।
2. ये सहभागिता की भावना उत्पन्न करते हैं।
3. इन खेलों में बिखराव नहीं जुड़ाव की भावना होती है।
4. शारीरिक एवं जीवन विकास में सहायक होते हैं।
5. टूटते घरों को बसाते हैं।
6. युग जीवन को नया संदेश देते हैं।
7. इन खेलों को दिव्यांग जन भी खेल सकते हैं जिससे हीनता का भाव नहीं आता।
8. लोक खेल नितांत मौलिक होते हैं।
9. इनमें कोमलता, विस्मय और जिज्ञासा का सहज भाव होता है।
10. ये अनुभवाधारित होते हैं जिससे व्यक्ति को जीवनपर्यन्त काम आते हैं।
11. ये कल्पनाशीलता और कौतूहल से नये सौन्दर्यषास्त्र को गढ़ते हैं।

अध्ययन का उद्देश्य

जीवन के विस्तृत क्षणों में कार्यों की सोद्देश्यता सुनिश्चित होती है उसी तरह लोक खेलों का अपना व्यापक और विशिष्ट उद्देश्य है, जो अधोलिखित हैं–

1. खेल शिक्षा में लोक खेलों को सम्मिलित करना।
2. बिखरी शक्तियों को एक कर शक्ति सम्पन्न बनाना।
3. व्यक्ति–सामाजिकों में हीनता बोध को समाप्त करना।
4. कलात्मक रुचि को बढ़ावा देते हुए विकास के नये आयाम स्थापित करना।
5. हमारी धरोहरों और विरासतों को संरक्षित करना।

साहित्यावलोकन

वर्ष 2019–20 का समय कई मायने में परिवर्तनकारी, युगान्तकारी और क्रांतिकारी वाला है किन्तु खेल–लोक खेलों की दृष्टि से बहुत अच्छा नहीं कहा जा सकता क्योंकि आज की बदलती खेल विधि मूल्यों के गिरावट और नैतिकता के पतन की ओर इशारा कर रही है। खेल विधि की मर्यादा भी अतिसंकुचित होती प्रतीत हो रही है तथा खेल भावना में अनुशासन का अभाव दिखाई दे रहा है। जैसे, खिलाड़ियों की डोपिंग टेस्ट या मैच फिक्सिंग का घटिया खेल, आदि।

वहीं जब लोक खेल विधि और अनुशासन की ओर दृष्टि डालते हैं तो वैयक्तिक–मानवीय विकास व रक्षा–संरक्षा की पक्षधरता दिखाई देती है।

लोक खेल और 20वीं–21वीं सदी के खेल, खेल–मैदान और उपकरणों–संसाधनों में कितना फर्क आया है। प्रत्येक स्तर के खेलों को देखकर अनुमान लगाया जा सकता है। एक समय था जब लोक में किस्से

कहानियों में भी खेल हो जाता था, अब तो खेलों का किस्सा खत्म और खेल विधि की कहानी भी बंद हो गई। इनकी जगह राष्ट्रीय–अन्तरराष्ट्रीय, नेशनल–इंटरनेशनल एवं घरेलू शब्द का इस्तेमाल होने लगा है। मैदानों ने भी ग्राउंड का स्थान ले लिया है। गजब का चमत्कार तो तब हुआ है जब खेल–स्थान घर, गली, आंगन, फरका, बाड़ी ने स्टेडियम का रूप ले लिया।

बेषक 20वीं–21वीं सदी के समय में खेले जाने वाला खेल स्टेडियम में खेला जाता है, मैदानों में नहीं। खो–खो, कबड्डी की जगह राष्ट्रीय–अन्तरराष्ट्रीय कहे जाने लगे हैं। घरेलू खेल लोक खेल नहीं इंटरनेशनल स्टेडियम में देश के अन्तरराष्ट्रीय स्तर के खिलाड़ी खेलते हैं। लोक का लगड़ी खेल 2019–20 के इण्टरनेशनल स्टेडियम में बाधा दौड़ हो गई है तथा पत्थर आदि की गोटियों को नेत लगाने की खेल–कला शूटिंग में बदल गई है। इस तरह लोक खेलों में बायवी कारनामें न होकर जीवन की स्फूर्ति होती है। घर–आंगन वाली लोक खेलों की तकनीक से परिचित नहीं होगा तो मानसिकता स्टेडियम और इंटरनेशनल वाली ही होगी।

थाई–थाई थप्पी

लोक का यह विशिष्ट और मनोरंजक खेल है। इस खेल में एक हाथ की हथेली को अपने एक हाथ में पकड़कर या दोनों हाथों की हथेलियों को अथवा दोनों हाथ की उंगलियों को यू आकार में बनाकर एक दूसरे की यू आकार में फंसाकर या पकड़कर उचकते हुए उल्लास के साथ घूमते हैं और कहते–गाते जाते हैं–

'थाई–थाई थप्पी गइया ब्यानी कवरी..... आदि।

अटकन चटकन

यह भी लोक में लड़के–लड़कियों का पूर्ण मनोरंजक एवं सौहार्द्रपूर्ण वाला खेल है। इसमें दो या दो से अधिक खिलाड़ी अपने–अपने दोनों हाथ की हथेलियों को पलटकर जमीन में टिका देते हैं और फिर बारी–बारी से एक खिलाड़ी सभी लोगों की हथेलियों में अपनी एक उंगली से स्पर्श करते हुए बोलते हैं–

'अटकन चटकन धरी चटाकन
बाघ झूले बघनी झूले
बाघ आवे लुस–लुस ....

फिर कहते हैं देखियो दाई घोड़ा आ रओ है, बीहर में पानी पीने के लिए। तब दाई कहती है यानि खिलाड़ियों में से एक कहता है 'जा राजा से पूछ आ। वह राजा के पास जाता है और कहता है– राजा जी! राजा जी! अपने घोड़े को बीहर का पानी पिला लूं। काफी मनुव्वल के बाद राजा अनुमति देता है। हां, जाओ पिला लो। पानी पिलाने के साथ ही खेल समाप्त हो जाता है। इसी तरह प्रत्येक खिलाड़ी को अपने–अपने घोड़े को पानी पिलाने का उपक्रम करना पड़ता है।

लोक का एक और अतिप्रसिद्ध खेल है 'कित्तन कित्तन पानी'। इसमें भी सभी खिलाड़ी गोल घेरा बनाकर खड़े हो जाते हैं और फिर एक दूसरे की हथेलियों को पकड़कर उछलते हुए कभी दांये से बांये और कभी बांये से दांये की ओर घूमते हुए कहते हैं–

'गोल गोल रानी, कित्तन कित्तन पानी
बोल बोल रानी कित्तन कित्तन पानी

दूसरा, जबाव में कहता है–

गोल गोल रानी कम्मर कम्मर पानी
बोल बोल रानी कम्मर कम्मर पानी।'

ये महज बाल क्रीड़ा नहीं है बल्कि जीवन की बुनियादी शिक्षा और शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक विकास का सशक्त उपादान भी है। यह लोक विज्ञान वाला अनूठा खेल है जिसमें पानी की अगम गहराई और अपरम्पार लक्षणों की शिक्षा मिलती है। प्राचीन समय में पानी के गहराई नापने की वैज्ञानिक शिक्षा लोक खेलों के माध्यम से दी जाती थी जिसे व्यक्ति जीवनपर्यंत स्मरण रखता है। अब चाहे बाढ़ का पानी हो, बहता हुआ हो या ठहरा हुआ विशाल दरिया का, सब का नाप लोक अपनी विधि से कर लेता था। इस खेल की यही विशिष्टता है।

टिप्पू खेलना

जिसे टिप–टिप (जल्दी–जल्दी) बीनकर, टप–टप उठाकर (पूरी तकनीक से जल्दी–जल्दी) एक के ऊपर एक रखने–रचने की प्रक्रिया से टिप्पू शब्द प्रचलन में आया होगा। दूसरा, गिरे हुए खेल वस्तु को पुनः उसी रूप में व्यस्थित कर देना ही टिप्पू कहलाता है। जिसका अभिप्राय गिरे हुए को उठाना एवं ऊपर से ऊपर की ओर ले जाना है। यह खेल जीवन विकास, व्यक्ति विकास के उठते जाना का संकेत है।

यह लोक का सर्वप्रिय एवं रोमांचकारी खेल है। इसमें दो से लेकर ज्यादा से ज्यादा लोग मिलकर खेल सकते हैं। इसमें खपरे/कबेलू के गोल–चौकोर सुविधानुसार सात, नौ, ग्यारह टुकड़े बनाये जाते हैं फिर एक के ऊपर एक रचते–रखते हैं और दूसरा दल कपड़े आदि की गेंद बनाकर नेंत लगाकर गिराया जाता है और फिर उसे दुबारा रचा जाता है, उसे पूर्ण रचने के उपरांत टिप्पू टिप्पू कहकर विजय होने का संकेत देते हैं। एक दल जो टिप्पू की रखवाली करता है वह गेंद से प्रहार करता है यदि टिप्पू रचने के पहले किसी को यह गेंद लग जाये तो वह पराजित हो जाता है एवं उसकी दाम देने की बारी आ जाती है फिर वह टिप्पू की रक्षा करता है। इसमें लड़के–लड़कियां सयाने सभी खेल सकते हैं। इस खेल को गली–आंगन–बाड़ी कहीं भी खेला जा सकता है।

घोड़ा बादाम खाई

यह शक्ति, कौशल और चतुराई को संकेतित करता हुआ खेल है जिसे लड़का–लड़की अलग–अलग एवं संयुक्त रूप से खेल सकते हैं। सभी आंगन, गली आदि स्थान में गोल घेरा बनाकर बैठ जाते हैं। खेल के प्रारंभ में पहले–दूसरे के उपक्रम को लोक विधि से अपनाते हुए जो अंतिम रह जाता है उसे गोल घेरे का वस्त्र खंड या रुमाल लेकर धीरे–धीरे दौड़ना पड़ता है तथा घेरे में बैठे हुए को पीछे लौटकर नहीं देखना होता केवल अनुमान लगाना होता है कि वस्त्र खंड उसके पीछे न रखा हो। यदि वस्त्र खंड को पीछे रखकर दौड़ पूरी कर उसे छू देता है तो उसे दाम देना होता है अर्थात् गोल घेरे के चक्कर की बारी आ जाती है। गोल घेरे का चक्कर यह कहते हुए लगाया जाता है–

'घोड़ा बादाम खाई, पीछे देखे मार खाई।'

अर्थात् जीवन में पीछे मुड़ना नहीं है, बस आगे बढ़ते जाना है। ऐसा भविष्यदर्शी खेल लोक में ही होता है। लोक खेलों की यही विशिष्टता है।

आपड़ी की थापड़ी

यह खेल दो व्यक्तियों के बीच खेला जाता है। लड़की अपनी सखी–सहेली के साथ एवं लड़का अपने मित्रों के साथ। दोनों भी यानि भाई–बहन, परिचित भी खेल सकते हैं। इससे एक–दूसरे के प्रति मैत्री भाव जाग्रत होता है।

'आपड़ी की थापड़ी, पोथी का पान
धर धर बाबू किसका कान

और एक–दूसरे का कान पकड़कर गाते जाते हैं–

चाईं चूईं मूसा की दाई
कान पकड़कर बाहर लाई।

यह एक प्रकार का योगाभ्यास भी है जिससे व्यक्ति की इन्द्रियां जाग्रत होती है तथा शरीर की मांस–पेसिंयों में रक्त प्रवाह संतुलित होता है।

अक्ती खेलना

खेल जीवन का अहम हिस्सा है। खेल–खेल में दिन, घड़ी, मास और तिथियों की शिक्षा का आदान–प्रदान लोक खेलों का वैशिष्ट्य है। अक्ती एक तिथि होती है जो वैषाख मास में आती है। अक्ती का खेल बालिकाओं द्वारा खेला जाता है। इसे बालिकाएं हर साल खेलती हैं। जिसकी तैयारी कई दिनों से की जाती है। मगर जब लड़की की शादी हो जाती है तो ससुराल वालों के आ जाने तथा शील–मर्यादा के भय से यह कहती है–

'अकती खेलन कैंसे जाऊं री बर तर मेले लिबउआ।
मोरे भी मेले मोरी गुइयां के मेले,
अक्ती खेलन कैसे जाऊं री बर तर मेले लिबउआ।
पैले लिबउआ मोरे नौआ जो आओ,
नौआ के संग न जाऊं री, बर तर मेले.....
दूजे लिबउआ मोरे ससुरा जो आओ,
ससुरा के संग न जाऊं री, बर तर मेले ...
तीजे लिबउआ मोरे जेठा जो आये,
जेठा के संग न जाऊं री, बर तर मेले ...
चौंथे लिबउआ मोरे देवरा जो आये,
देवरा के संग न जाऊं री, बर तर मेले ...
पांचय लिबउआ मोरे राजा जो आये,
राजा के संग जाऊं री, बर तर मेले ...

भवाई खेलना

लोक रंजन और दुःख भंजन लोक अपनी तरह से करता आया है। खेल–खेल में दुनिया–संसार के प्रति आसक्ति से विरक्त कर आनंद लोक में विहार कराना लोक खेल का प्रतिपाद्य है। देखिए, दुनिया का अनूठा और अद्भुत – 'वेष खेल'। जिसे 'भवाई खेल' भी कहा जाता है। यह खेल भारत के गुजरात में खेले जाने वाला सबसे प्रख्यात खेल है। इतना ही नहीं लोक की आंखों में सदा–सदा के लिए मूर्तिमान हो जाने वाला खेल है। यह गुजरात प्रांत का एक प्रकार से लोक नाट्य भी और खेल भी। इसका ऐतिहासिक संदर्भ कुछ ऐसा है कि तुगलक सत्ता के स्थापना काल में उत्तर गुजरात के सिद्धपुर नामक नगर में असाईत के जन्म काल यानि 1320 ई. से सन 1370ई. को माना जाता है। ''भवाई का मंडल प्रतिवर्ष सात–आठ महीनों तक भवाई खेलता है। कई मंडल ऐसे भी हैं जो केवल नवरात्रि में ही भवाई खेलता है। भवाई खेलने का प्रमुख उद्देश्य माता (अम्बा) की उपासना का है।''6 ''असाइत ने वेष खेलने की प्रचलित परम्परा को परिष्कृत करके इसे अधिक लोकप्रिय बनाया।''[7] वेष खेल कुछ इस प्रकार हैं– ''जोगी और जोगन का वेष, नपुंसक का वेष, जंडा और जूलन का वेष, जसमा ओदन तथा पुरबिया का वेष'' आदि प्रख्यात वेष खेल हैं। कहा जाता है कि शांता बाई द्वारा भवाई शैली में लिखा गया ''जस्मा ओड़न नाटक भारत के बाहर लंदन और जर्मनी में खेला गया''[8] है। लोक में भवाई खेलने वाले को 'भवैया' कहा जाता है।

निष्कर्ष

निष्कर्षतः लोक खेल नितांत मौलिक होते हैं जिससे दिमागी कसरत को साधना की तरह करते हुए कलात्मक आयामों से ऊर्जवस्वित होता है। साथ ही यह बता पाना कि लोक खेल कला भी है और साधना भी – जीवन विकास तथा युग को गतिमान बनाने के लिए। साथ ही सदा से बिखरते घरों को बसाने की अद्भुत शक्ति है। इतना ही नहीं लोक खेलों का गुण–धर्म पूर्णता प्रदान करना है इसलिए ये हमारे धरोहर भी हैं और विरासत भी।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. *प्रो0 योगेन्द्र प्रताप सिंह : हिन्दी अनुशीलन(विशेषांक) बुन्देलखंड संस्कृति एवं साहित्य, भारतीय हिन्दी परिषद्, प्रयाग, वर्ष–56, संयुक्तांक 1–4, जनवरी दिसम्बर 2014, पृ. 257*
2. *अशोक मिश्र : चौमासा, वर्ष 34, अंक 106, मार्च–जून 2018, आदिवासी लोक कला एवं बोली विकास अकादमी, मध्यप्रदेश संस्कृति परिषद्, श्यामला हिल्स, भोपाल, 462002, पृ.17*
3. *अशोक मिश्र : चौमासा, वर्ष 34, अंक 106, मार्च–जून 2018, आदिवासी लोक कला एवं बोली विकास अकादमी, मध्यप्रदेश संस्कृति परिषद्, श्यामला हिल्स, भोपाल,462002, पृ. 3 के सम्पादकीय से।*
4. *अशोक मिश्र : चौमासा, वर्ष 34, अंक 106, मार्च–जून 2018, आदिवासी लोक कला एवं बोली विकास अकादमी, मध्यप्रदेश संस्कृति परिषद्, श्यामला हिल्स, भोपाल,462002, पृ. 8–9*
5. *अशोक मिश्र : चौमासा, वर्ष 34, अंक 106, मार्च–जून 2018, आदिवासी लोक कला एवं बोली विकास अकादमी, मध्यप्रदेश संस्कृति परिषद्, श्यामला हिल्स, भोपाल,462002,पृ. 8*
6. *डॉ.रमाशंकर सिंह, डॉ. मनीषा चौधरी : हिमांजलि जुलाई–दिसम्बर 2018, अंक 18 भारतीय उच्च अध्ययन संस्थान, राष्ट्रपति निवास षिमला, पृ. 48*
7. *डॉ.रमाशंकर सिंह, डॉ. मनीषा चौधरी : हिमांजलि जुलाई–दिसम्बर 2018, अंक 18 भारतीय उच्च अध्ययन संस्थान, राष्ट्रपति निवास षिमला, पृ. 47*
8. *डॉ. राजेश श्रीवास्तव 'शम्बर' : लोक साहित्य, कैलाश पुस्तक सदन, हमीदिया मार्ग, भोपाल– 462001, पृ. 101*